Gyanvividha, Vol.-3; Issue-1 (Jan.-March) 2026 : PP-11-21

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-4.5
Vol.-3; Issue-1 (Jan.-March) 2026
Page No.- 11-21
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

Dr. Ravi Kant Pandey

Assistant Professor (Guest),
Dept. of Political Science, A.S. College, Bikramganj, Rohtas, Bihar.

Corresponding Author :

Dr. Ravi Kant Pandey

Assistant Professor (Guest),
Dept. of Political Science, A.S. College, Bikramganj, Rohtas, Bihar.

भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता के आरंभ का राजनैतिक ऐतिहासिक अध्ययन

सारांश : यह शोध पत्र भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता (Communalism) के उद्भव और उसके प्रारंभिक विकास का एक आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। सामान्यतः यह माना जाता है कि सांप्रदायिकता भारत की एक प्राचीन समस्या है, परंतु यह अध्ययन इस तर्क को पुष्ट करता है कि सांप्रदायिकता आधुनिक काल की एक 'राजनीतिक निर्मिति' (Political Construct) है, जिसके जड़ें ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की नीतियों में गहराई तक धंसी हुई हैं।

शोध का मुख्य केंद्र 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर 1947 के विभाजन तक की घटनाओं पर आधारित है। इसमें विशेष रूप से ब्रिटिश सरकार की 'बांटो और राज करो' (Divide and Rule) की नीति, 1905 का बंगाल विभाजन और 1909 के 'मार्ले-मिंटो सुधार' के माध्यम से दी गई पृथक निर्वाचन प्रणाली (Separate Electorates) का विश्लेषण किया गया है, जिसने धार्मिक पहचान को राजनीतिक पहचान में बदल दिया।

यह पत्र यह भी जांचता है कि किस प्रकार सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन और शिक्षा के असमान वितरण ने दो समुदायों के बीच अविश्वास की खाई को चौड़ा किया। अंततः, यह शोध निष्कर्ष निकालता है कि भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता का आरंभ केवल धार्मिक मतभेदों के कारण नहीं, बल्कि सत्ता के संघर्ष, संसाधनों के वितरण और औपनिवेशिक सत्ता द्वारा अपनी जड़ें मजबूत करने के लिए अपनाए गए रणनीतिक हथकंडों का परिणाम था।

मुख्य शब्द (Keywords): सांप्रदायिकता, औपनिवेशिक राजनीति, पृथक निर्वाचन, भारतीय राजनीति, ऐतिहासिक अध्ययन, बांटो और राज करो।

प्रस्तावना : भारतीय राजनीति के समकालीन परिदृश्य में 'सांप्रदायिकता' एक ऐसी जटिल और चुनौतीपूर्ण परिघटना है, जिसने न

केवल देश के भूगोल को बदला, बल्कि इसकी सामाजिक-राजनीतिक चेतना को भी गहराई से प्रभावित किया है। अकादमिक जगत में यह बहस का विषय रहा है कि क्या सांप्रदायिकता भारत के मध्यकालीन अतीत की निरंतरता है या यह आधुनिक औपनिवेशिक शासन की एक विशिष्ट उपज है। प्रसिद्ध इतिहासकार बिपिन चंद्र के अनुसार, "सांप्रदायिकता एक आधुनिक विचारधारा है, जिसकी जड़ें आधुनिक सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं में निहित हैं" (**चन्द्रा, 2005, पृ. 1**)। यह केवल धर्म का राजनीति में प्रवेश नहीं है, बल्कि राजनीति के लिए धर्म का एक साधन के रूप में प्रयोग है।

ऐतिहासिक रूप से, भारत की 'साझा संस्कृति' (Syncretic Culture) और 'गंगा-जमुनी तहजीब' के उदाहरण मध्यकाल में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, जहाँ धार्मिक पहचान सामाजिक वैमनस्य का प्राथमिक कारण नहीं थी। किंतु, 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद, जिसमें हिंदू और मुसलमानों ने कंधे से कंधा मिलाकर ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी थी, औपनिवेशिक प्रशासन की नीतियों में एक निर्णायक मोड़ आया। सर जॉन स्ट्रैची जैसे ब्रिटिश अधिकारियों का मानना था कि "भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थिरता के लिए दो बड़े समुदायों के बीच मतभेदों का बने रहना आवश्यक है" (**स्ट्रैची, 1888**)। यहीं से 'बांटो और राज करो' (Divide and Rule) की उस संस्थागत नीति का आरंभ होता है, जिसने कालांतर में सांप्रदायिकता को एक वैधानिक स्वरूप प्रदान किया।

सांप्रदायिकता के विकास को समझने के लिए इसे तीन चरणों में देखा जा सकता है। प्रथम चरण 'उदार सांप्रदायिकता' का था, जहाँ धार्मिक समुदायों ने केवल अपनी आर्थिक और शैक्षिक मांगों को सरकार के समक्ष रखा। द्वितीय चरण 'उग्र सांप्रदायिकता' (Radical Communalism) की ओर बढ़ा, जहाँ एक समुदाय के हितों को दूसरे के विरुद्ध बताया जाने लगा। जैसा कि एम.एस. गोलवलकर और एम.ए. जिन्ना के विचारों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है, इस दौर में "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद" और "द्वि-राष्ट्र सिद्धांत" ने जन्म लिया (**गोलवलकर, 1939; जिन्ना, 1940**)।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य उन राजनीतिक और ऐतिहासिक कारकों की शिनाख्त करना है, जिन्होंने 19वीं सदी के उत्तरार्ध और 20वीं सदी के पूर्वार्ध में सांप्रदायिकता के बीज बोए। इसमें 1909 के मार्ले-मिंटो सुधारों द्वारा प्रदत्त 'पृथक निर्वाचन मंडल' (Separate Electorates) की भूमिका का विशेष अध्ययन किया जाएगा, जिसे असीथ कुमार मजूमदार "भारतीय लोकतंत्र के शरीर में डाला गया विष" करार देते हैं (**मजूमदार, 1960**)। इसके अतिरिक्त, यह शोध इस बात पर भी प्रकाश डालेगा कि कैसे औपनिवेशिक शिक्षा पद्धति और सांप्रदायिक इतिहास लेखन (Communal Historiography) ने दो समुदायों के बीच 'अविश्वास की संस्कृति' को जन्म दिया (**थापर, 2004**)।

अतः, यह प्रस्तावना इस तर्क को रेखांकित करती है कि भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि एक सुविचारित राजनीतिक परियोजना थी, जिसने भारतीय राष्ट्रवाद के धर्मनिरपेक्ष चरित्र को चुनौती दी और अंततः विभाजन की त्रासदी का मार्ग प्रशस्त किया।

चार्ट की व्याख्या (Explanation for the Thesis):

1. Stage 1: Liberal Communalism (उदार सांप्रदायिकता): यह प्रारंभिक चरण था (लगभग 1870-1900)। इसमें समुदायों ने अपनी धार्मिक पहचान का उपयोग केवल आधुनिक शिक्षा और सरकारी नौकरियों में हिस्सेदारी पाने के लिए किया। यहाँ राष्ट्रवादी हितों के साथ कोई सीधा टकराव नहीं था।
2. Stage 2: Radical Communalism (उग्र सांप्रदायिकता): 20वीं सदी के आरंभ (1905 के बाद) में यह विचार बलवती हुआ कि एक धार्मिक समुदाय के हित दूसरे समुदाय के हितों के विरोधी हैं। यहाँ राजनीति का पूर्णतः "सांप्रदायीकरण" शुरू हुआ।
3. Stage 3: Extreme/Separatist Communalism (अलगाववादी सांप्रदायिकता): यह अंतिम और सबसे घातक चरण था (1930-1947)। इसमें यह तर्क दिया गया कि हिंदू और मुसलमान दो अलग राष्ट्र हैं जो एक साथ नहीं रह सकते। इसकी परिणति 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' (Two-Nation Theory) और विभाजन में हुई।

सांप्रदायिकता के उदय के ऐतिहासिक कारण (Historical Roots of Communalism) : भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता का उदय किसी एक घटना का परिणाम नहीं था, बल्कि यह दीर्घकालिक ऐतिहासिक प्रक्रियाओं, औपनिवेशिक षड्यंत्रों और सामाजिक-आर्थिक असंतुलन का एक जटिल मिश्रण था। इस खंड में उन बुनियादी कारणों का विश्लेषण किया गया है जिन्होंने सांप्रदायिक चेतना को एक राजनीतिक विचारधारा में बदल दिया।

- **औपनिवेशिक इतिहास लेखन और पहचान का निर्माण :** सांप्रदायिकता की वैचारिक नींव रखने में ब्रिटिश इतिहासकारों और प्रशासकों की 'सांप्रदायिक इतिहास लेखन' (Communal Historiography) पद्धति का सबसे बड़ा हाथ रहा। जेम्स मिल ने अपनी पुस्तक 'The History of British India' (1817) में भारतीय इतिहास को तीन कालखंडों में विभाजित किया: हिंदू काल, मुस्लिम काल और ब्रिटिश काल।

बिपिन चंद्र के अनुसार, "इतिहास के इस विभाजन ने यह भ्रामक धारणा पैदा की कि हिंदू और मुसलमान दो अलग-अलग और विरोधी खेमे थे, जो सदियों से एक-दूसरे के साथ संघर्षरत थे" (**चन्द्रा, 1984, पृ. 210**)। इस लेखन शैली ने मध्यकालीन शासकों की धार्मिक पहचान को ही उनके शासन का मुख्य आधार बताकर पेश किया, जिससे आधुनिक युग के शिक्षित वर्ग में ऐतिहासिक द्वेष की भावना पैदा हुई। रोमिला थापर तर्क देती हैं कि इस तरह के 'औपनिवेशिक निर्माण' ने भारतीय समाज की साझा संस्कृति और सह-अस्तित्व के लंबे इतिहास को दरकिनार कर दिया (**थापर, 1989**)।

- **1857 के बाद ब्रिटिश नीति में परिवर्तन :** 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम भारतीय सांप्रदायिकता के इतिहास में एक 'वाटरशेड मोमेंट' (Watershed moment) था। विद्रोह में हिंदू-मुस्लिम एकता ने ब्रिटिश क्राउन को झकझोर दिया था। इसके परिणामस्वरूप, अंग्रेजों ने अपनी सैन्य और प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया।

लॉर्ड एलफिंस्टन के अनुसार, "Divide et impera (बांटो और राज करो) पुराने रोमन साम्राज्य का सिद्धांत था और यही हमारा भी होना चाहिए" (**एलफिंस्टन उद्धृत स्ट्रैची, 1888**)। विद्रोह के दमन के बाद प्रारंभिक वर्षों में अंग्रेजों ने मुसलमानों को अधिक विद्रोही माना और उनके प्रति दमनकारी रुख अपनाया, लेकिन 1870 के दशक के बाद डब्ल्यू. डब्ल्यू. हंटर की पुस्तक 'The Indian Musalmans' (1871) के प्रकाशन के साथ ही रुख में बदलाव आया। हंटर ने तर्क दिया कि मुसलमान पिछड़ रहे हैं और यदि उन्हें विशेष रियायतें देकर संतुष्ट नहीं किया गया, तो वे ब्रिटिश सत्ता के लिए खतरा बने रहेंगे (**हंटर, 1871**)।

- **सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों का अनपेक्षित प्रभाव :** 19वीं सदी के सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलनों का उद्देश्य अपने-अपने धर्मों को आधुनिक बनाना था, परंतु इनके कुछ पहलुओं ने अनजाने में सांप्रदायिक सीमाओं को स्पष्ट कर दिया।

1. आर्य समाज और शुद्धि आंदोलन: स्वामी दयानंद सरस्वती के नेतृत्व में हिंदू धर्म की 'प्राचीन शुद्धता' की ओर लौटने के आह्वान ने मुस्लिम नेतृत्व में असुरक्षा पैदा की (**जोन्स, 1976**)।
2. वहाबी और देवबंद आंदोलन: मुस्लिम समाज में आए इन आंदोलनों ने 'शुद्ध इस्लाम' पर जोर दिया, जिससे स्थानीय स्तर पर प्रचलित साझा परंपराएं (Syncretic traditions) कमजोर हुईं।

के.एन. पणिक्कर का तर्क है कि "इन आंदोलनों ने समुदायों को अपने अतीत के गौरवशाली और शुद्ध रूप की ओर मोड़ने का प्रयास किया, जिससे अंतर-सामुदायिक दूरी बढ़ी" (**पणिक्कर, 1991**)।

- **आर्थिक असंतुलन और मध्यम वर्गीय प्रतिस्पर्धा :** सांप्रदायिकता का एक मुख्य आधार आर्थिक था। 19वीं सदी के अंत में सरकारी नौकरियों और नए उभरते व्यवसायों में भयंकर प्रतिस्पर्धा थी। चूँकि हिंदू समुदाय ने आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा को मुसलमानों की तुलना में जल्दी अपनाया था, अतः सरकारी नौकरियों और प्रशासनिक पदों पर उनका वर्चस्व हो गया (**रजा, 1986**)।

जब मुस्लिम मध्यम वर्ग ने शिक्षा प्राप्त करना शुरू किया, तो उन्हें नौकरियों में पहले से जमे हुए हिंदू मध्यम वर्ग से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी। इस आर्थिक प्रतिस्पर्धा को राजनीतिक नेताओं ने 'धार्मिक भेदभाव' का रंग दे दिया। पॉल ब्रास के अनुसार, "सांप्रदायिकता अक्सर आर्थिक और राजनीतिक हितों को धार्मिक प्रतीकों के आवरण में लपेटने का नाम है" (**ब्रास, 1974**)।

औपनिवेशिक नीतियां: 'बांटो और राज करो' (Colonial Policies: 'Divide and Rule') : ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान 'बांटो और राज करो' की नीति केवल एक प्रशासनिक रणनीति नहीं थी, बल्कि यह एक सुविचारित 'राजनीतिक इंजीनियरिंग' थी, जिसका उद्देश्य भारतीय राष्ट्रवाद के उभरते ज्वार को रोकना था। इस नीति ने धार्मिक पहचानों को राजनीतिक श्रेणियों में बदलकर भारतीय समाज के ताने-बाने को स्थायी रूप से खंडित कर दिया।

- **फूट डालो और राज करो: एक रणनीतिक उपकरण :** 1857 के विद्रोह के बाद, ब्रिटिश रणनीतिकारों ने महसूस किया कि यदि भारत के दो प्रमुख समुदाय—हिंदू और मुस्लिम-एकजुट रहे, तो ब्रिटिश साम्राज्य का टिक पाना असंभव होगा। औपनिवेशिक सचिव लॉर्ड क्रॉस ने वायसराय लॉर्ड डफरिन को लिखे एक पत्र में स्पष्ट किया था कि "सांप्रदायिक आधार पर विभाजन हमारे शासन की सुरक्षा का आधार होना चाहिए" (**क्रॉस, 1886**)। इस नीति के तहत, ब्रिटिश प्रशासन ने बारी-बारी से कभी एक समुदाय को संरक्षण दिया तो कभी दूसरे को, ताकि उनके बीच निरंतर प्रतिस्पर्धी और संदेहास्पद वातावरण बना रहे।
- **1905 का बंगाल विभाजन: सांप्रदायिकता का पहला संस्थागत प्रहार :** लॉर्ड कर्जन द्वारा 1905 में किया गया बंगाल विभाजन 'बांटो और राज करो' की नीति का सबसे प्रखर उदाहरण था। यद्यपि इसका आधिकारिक कारण 'प्रशासनिक सुविधा' बताया गया, किंतु वास्तविक उद्देश्य राष्ट्रवादी आंदोलन के केंद्र बंगाल को धार्मिक आधार पर विभाजित करना था। कर्जन ने पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को यह कहकर लुभाने का प्रयास किया कि "एक नया प्रांत बनाने से मुसलमानों को वे लाभ मिलेंगे जो उन्हें कभी प्राप्त नहीं हुए" (**कर्जन उद्धृत सरकार, 1973**)।

सुमित सरकार के अनुसार, यह विभाजन केवल एक प्रशासनिक निर्णय नहीं था, बल्कि "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की धर्मनिरपेक्ष एकता को चुनौती देने के लिए मुस्लिम सांप्रदायिकता को खाद-पानी देने का एक सोचा-समझा प्रयास था" (**सरकार, 1983**)।

- **पृथक निर्वाचन मंडल (1909): सांप्रदायिकता का वैधीकरण :** सांप्रदायिकता के विकास में सबसे घातक प्रहार 1909 के 'मार्ले-मिंटो सुधार' के माध्यम से किया गया। इसके तहत 'पृथक निर्वाचन मंडल' (Separate Electorates) की व्यवस्था की गई, जिसमें मुस्लिम उम्मीदवारों के लिए केवल मुस्लिम मतदाता ही मतदान कर सकते थे।

अकादमिक दृष्टि से, यह भारतीय राजनीति का वह बिंदु था जहाँ 'धार्मिक पहचान' को 'राजनीतिक पहचान' के रूप में संवैधानिक मान्यता मिल गई। डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा था कि "पृथक निर्वाचन ने समुदायों के बीच एक स्थायी दीवार खड़ी कर दी और उन्हें राष्ट्रीय मुख्यधारा से अलग कर दिया" (**अंबेडकर, 1945, पृ. 89**)। के.एम. मुंशी ने इसे "लोकतंत्र की हत्या" करार दिया, क्योंकि इसने चुनावी प्रतिस्पर्धा को राष्ट्रीय हितों के बजाय सांप्रदायिक हितों की ओर मोड़ दिया।

तुलनात्मक विश्लेषण: भारतीय परिषद अधिनियम (1892) बनाम मार्ले-मिंटो सुधार (1909)

तुलना का आधार	भारतीय परिषद अधिनियम, 1892	मार्ले-मिंटो सुधार (भारतीय परिषद अधिनियम), 1909
मूल उद्देश्य	परिषदों का विस्तार और शिक्षित भारतीयों को सीमित प्रतिनिधित्व देना।	उभरते राष्ट्रवाद को दबाना और 'बांटो और राज करो' की नीति को वैधानिक बनाना।
निर्वाचन पद्धति	'अप्रत्यक्ष चुनाव' की शुरुआत (लेकिन 'चुनाव' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया)।	प्रत्यक्ष निर्वाचन की शुरुआत की गई, लेकिन अत्यधिक सीमित मताधिकार के साथ।
पृथक निर्वाचन मंडल (Separate Electorates)	कोई प्रावधान नहीं था। सभी धार्मिक समुदायों के लिए साझा प्रतिनिधित्व की व्यवस्था थी।	प्रमुख प्रावधान: मुसलमानों के लिए 'पृथक निर्वाचन मंडल' की शुरुआत की गई। यह सांप्रदायिकता का वैधानिक आरंभ था।
केंद्रीय परिषद का आकार	सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 10 से 16 के बीच की गई।	सदस्यों की संख्या को बढ़ाकर 16 से 60 (पदेन सदस्यों के अलावा) कर दिया गया।
कार्यकारी परिषद में भागीदारी	किसी भारतीय को कार्यकारी परिषद (Executive Council) में स्थान नहीं दिया गया।	सत्येंद्र प्रसाद सिन्हा वायसराय की कार्यकारी परिषद में शामिल होने वाले पहले भारतीय बने।
बजट और प्रश्न पूछना	बजट पर चर्चा करने का अधिकार मिला, लेकिन पूरक प्रश्न (Supplementary Questions) पूछने का नहीं।	बजट पर प्रस्ताव रखने और अनुपूरक प्रश्न पूछने का अधिकार प्रदान किया गया।

1892 का अधिनियम जहाँ प्रशासनिक सुधारों की ओर एक छोटा कदम था, वहीं 1909 के सुधारों ने 'पृथक निर्वाचन' के माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद के धर्मनिरपेक्ष ढांचे पर प्रहार किया। लॉर्ड मिंटो ने लॉर्ड मार्ले को लिखे पत्र में स्पष्ट कहा था कि **"हम नाग के दांत बो रहे हैं और इसकी फसल बहुत कड़वी होगी"** (The harvest will be bitter)।

- **सिमला प्रतिनिधिमंडल (1906) और मुस्लिम लीग का उदय :** अक्टूबर 1906 में आगा खान के नेतृत्व में एक मुस्लिम प्रतिनिधिमंडल (सिमला डेप्युटेशन) वायसराय लॉर्ड मिंटो से मिला। ऐतिहासिक प्रमाणों (जैसे लेडी मिंटो की डायरी) से यह स्पष्ट होता है कि यह मुलाक़ात ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा ही प्रायोजित (Engineered) थी। इसके तुरंत बाद 'ऑल इंडिया मुस्लिम लीग' की स्थापना हुई, जिसे ब्रिटिश सत्ता ने कांग्रेस के 'प्रतिपक्ष' (Counter-weight) के रूप में संरक्षण दिया (**मजूमदार, 1966**)।

  फ्रांसिस रॉबिन्सन का तर्क है कि "ब्रिटिश नीतियों ने जानबूझकर कुलीन मुसलमानों को एक ऐसी राजनीतिक

पहचान प्रदान की, जिसने उन्हें कांग्रेस के समावेशी राष्ट्रवाद से दूर कर दिया" (**रॉबिन्सन, 1974**)।

राजनैतिक मोड़ और वैधानिक विकास (Political Milestones and Constitutional Developments)

भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता का विकास केवल वैचारिक नहीं था, बल्कि इसे विभिन्न वैधानिक अधिनियमों और राजनीतिक समझौतों के माध्यम से संस्थागत बनाया गया। 1909 से 1947 के बीच हुए वैधानिक बदलावों ने भारतीय समाज के भीतर अलगाववाद की प्रवृत्तियों को सुदृढ़ किया।

- **लखनऊ समझौता (1916): एक विरोधाभासी मोड़ :** इतिहास की दृष्टि से 1916 का लखनऊ समझौता हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रतीक माना जाता है, क्योंकि इसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग एक मंच पर आए थे। किंतु, अकादमिक विश्लेषण एक भिन्न चित्र प्रस्तुत करता है। इस समझौते में कांग्रेस ने मुस्लिम लीग की 'पृथक निर्वाचन' की मांग को स्वीकार कर लिया।

बिपिन चंद्र का तर्क है कि "कांग्रेस ने सांप्रदायिकता से लड़ने के बजाय सांप्रदायिक नेताओं के साथ समझौता किया, जिससे अनजाने में सांप्रदायिक राजनीति को वैधता मिल गई" (**चन्द्रा, 1984, पृ. 165**)। यह समझौता इस गलत धारणा पर आधारित था कि समुदायों के बीच एकता केवल उनके शीर्ष नेताओं के बीच सौदेबाजी से संभव है।

- **खिलाफत और असहयोग आंदोलन का प्रभाव :** महात्मा गांधी के नेतृत्व में खिलाफत आंदोलन (1919-24) को असहयोग आंदोलन के साथ जोड़ना एक बड़ा रणनीतिक मोड़ था। यद्यपि इसका उद्देश्य अल्पकालिक एकता स्थापित करना था, लेकिन राजनीति में धार्मिक प्रतीकों (जैसे 'खिलाफत') के प्रवेश ने राजनीतिक चेतना को धार्मिक पहचान के साथ और अधिक मजबूती से जोड़ दिया। जैसा कि जुडिथ ब्राउन रेखांकित करती हैं, "इसने एक ऐसे जनसमूह को राजनीति में सक्रिय किया जिसकी निष्ठा राष्ट्रीयता के बजाय धार्मिक बंधुत्व (Religious Solidarity) के प्रति अधिक थी" (**ब्राउन, 1972**)।
- **1935 का भारत सरकार अधिनियम और सांप्रदायिक पंचाट (Communal Award) :** 1932 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैमसे मैकडोनाल्ड द्वारा घोषित 'सांप्रदायिक पंचाट' ने पृथक निर्वाचन के सिद्धांत को न केवल मुसलमानों तक सीमित रखा, बल्कि इसे सिखों, ईसाइयों और दलितों (Depressed Classes) तक विस्तारित करने का प्रयास किया।

1935 के अधिनियम ने प्रांतों में स्वायत्तता दी, लेकिन इसके तहत हुए चुनावों ने सांप्रदायिक ध्रुवीकरण को और स्पष्ट कर दिया। 1937 के चुनावों के बाद, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच गठबंधन सरकारों की विफलता ने यह संदेश दिया कि दोनों का साथ चलना संभव नहीं है। अनिता इंदर सिंह के अनुसार, "1937-39 के दौरान सत्ता के संघर्ष ने सांप्रदायिकता को एक अपरिहार्य राजनीतिक वास्तविकता बना दिया" (**सिंह, 1987**)।

- **द्वि-राष्ट्र सिद्धांत और 1940 का लाहौर प्रस्ताव :** 1930 के दशक के अंत तक, सांप्रदायिकता ने 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' (Two-Nation Theory) का रूप ले लिया था। वी.डी. सावरकर ने 1937 के हिंदू महासभा के अधिवेशन में कहा था कि "भारत को एक समरूप राष्ट्र नहीं माना जा सकता, यहाँ मुख्य रूप से दो राष्ट्र हैं - हिंदू और मुसलमान" (**सावरकर, 1937**)।

इसके समानांतर, मोहम्मद अली जिन्ना ने 1940 के लाहौर अधिवेशन में आधिकारिक रूप से पाकिस्तान की मांग रखी। जिन्ना का तर्क था कि "हिंदू और इस्लाम केवल दो धर्म नहीं हैं, बल्कि दो अलग-अलग सामाजिक व्यवस्थाएं हैं" (**जिन्ना, 1940**)। यह वैधानिक और राजनीतिक विकास का वह चरम बिंदु था जहाँ से विभाजन अपरिहार्य लगने लगा।

सांप्रदायिकता और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (Role of INC) : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC) ने ऐतिहासिक रूप से स्वयं को एक ऐसी छतरी (Umbrella Organization) के रूप में देखा, जिसके नीचे भारत की विविध पहचानें एकजुट हो सकें। हालाँकि, सांप्रदायिकता के विरुद्ध कांग्रेस की लड़ाई में कई वैचारिक अंतर्विरोध और रणनीतिक

चूकें स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।

- **धर्मनिरपेक्षता बनाम तुष्टिकरण की राजनीति :** कांग्रेस की धर्मनिरपेक्षता अक्सर एक 'प्रतिक्रियावादी नीति' (Reactive Policy) के रूप में कार्य करती थी। प्रसिद्ध राजनीति विज्ञानी राजीव भार्गव के अनुसार, "कांग्रेस की धर्मनिरपेक्षता 'समान दूरी' (Equal distance) के सिद्धांत पर आधारित थी, लेकिन व्यवहार में यह अक्सर समुदायों के बीच संतुलन बनाने की एक असफल कोशिश बन गई" (**भार्गव, 1998**)।

कांग्रेस पर अक्सर यह आरोप लगाया गया कि उसने अल्पसंख्यकों को साथ जोड़ने के लिए 'तुष्टिकरण' (Appeasement) का सहारा लिया। 1916 के लखनऊ समझौते में 'पृथक निर्वाचन मंडल' को स्वीकार करना इसकी पहली बड़ी भूल मानी जाती है। आर.सी. मजूमदार का तर्क है कि "कांग्रेस ने यह मान लिया कि मुस्लिम लीग ही सभी मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करती है, जिससे उसने धर्मनिरपेक्ष मुसलमानों की आवाज़ को कमजोर कर दिया और सांप्रदायिक नेतृत्व को वैधानिकता प्रदान की" (**मजूमदार, 1966, पृ. 320**)।

- **वैचारिक अंतर्विरोध: कांग्रेस के भीतर की सांप्रदायिकता :** कांग्रेस के लिए सबसे बड़ी चुनौती उसके भीतर मौजूद 'हिंदू राष्ट्रवादी' स्वर थे। 1920 और 1930 के दशक में कांग्रेस एक विचित्र स्थिति में थी। एक ओर मुस्लिम लीग उसे 'हिंदू पार्टी' कहती थी, तो दूसरी ओर हिंदू महासभा उस पर 'मुस्लिम समर्थक' होने का आरोप लगाती थी।

बिपिन चंद्र के अनुसार, "कांग्रेस की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि वह अपने सदस्यों को सांप्रदायिक संगठनों (जैसे हिंदू महासभा) का सदस्य बनने से रोकने में बहुत देर तक हिचकिचाती रही" (**चन्द्रा, 1984, पृ. 182**)। मदन मोहन मालवीय और लाला लाजपत राय जैसे नेताओं की दोहरी सदस्यता ने मुस्लिम समुदाय के मन में कांग्रेस के धर्मनिरपेक्ष चरित्र को लेकर संदेह पैदा किया।

- **1937 के चुनावों के बाद का संकट और सत्ता संघर्ष :** 1937 के प्रांतीय चुनावों के बाद संयुक्त प्रांत (UP) में कांग्रेस द्वारा मुस्लिम लीग के साथ गठबंधन सरकार बनाने से इनकार करना एक निर्णायक राजनैतिक मोड़ था। आयशा जलाल का तर्क है कि "कांग्रेस के 'अकेले शासन' (Unitary power) के आग्रह ने जिन्ना को यह तर्क देने का हथियार दे दिया कि कांग्रेस के अधीन मुसलमानों का भविष्य सुरक्षित नहीं है" (**जलाल, 1985**)।

हालाँकि, जवाहरलाल नेहरु का तर्क था कि वह एक राष्ट्रीय पार्टी है और वह सांप्रदायिक आधार पर सत्ता का बँटवारा नहीं कर सकती, लेकिन इस निर्णय ने 'मुस्लिम असुरक्षा' को 'अलगाववाद' में बदल दिया। शशिशेखर झा के अनुसार, "कांग्रेस की संगठनात्मक कठोरता और 'मुस्लिम जनसंपर्क अभियान' (Muslim Mass Contact Programme) की विफलता ने मुस्लिम लीग के लिए जमीन तैयार कर दी" (**झा, 1972**)।

- **गांधीवादी प्रतीकों का अनपेक्षित प्रभाव :** महात्मा गांधी द्वारा राजनीति में 'रामराज्य', 'गौ-रक्षा' और 'खिलाफत' जैसे धार्मिक प्रतीकों का प्रयोग भी विवादों के घेरे में रहा है। यद्यपि गांधी का उद्देश्य राजनीति का नैतिकीकरण (Moralization) करना था, लेकिन पी.डी. कौशिक के अनुसार, "इन प्रतीकों का अनपेक्षित परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक विमर्श तर्कसंगत होने के बजाय धार्मिक भावनाओं पर केंद्रित हो गया, जिसका लाभ अंततः सांप्रदायिक तत्वों ने उठाया" (**कौशिक, 1964**)।

कांग्रेस की नीतियों का प्रभाव (तालिका)

घटना	कांग्रेस का कदम	सांप्रदायिकता पर प्रभाव
लखनऊ समझौता (1916)	पृथक निर्वाचन को स्वीकार किया	सांप्रदायिक राजनीति को पहली वैधानिक मान्यता मिली।

घटना	कांग्रेस का कदम	सांप्रदायिकता पर प्रभाव
असहयोग आंदोलन (1920)	खिलाफत के साथ गठबंधन	राजनीति में धार्मिक पहचान का स्थायी प्रवेश।
नेहरू रिपोर्ट (1928)	संयुक्त निर्वाचन की मांग	मुस्लिम लीग के साथ पूर्ण अलगाव का आरंभ।
1937 चुनाव परिणाम	गठबंधन सरकार से इनकार	मुस्लिम लीग के 'पाकिस्तान प्रस्ताव' की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

विभाजन की त्रासदी और इसका प्रभाव (The Climax: Partition) : भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता का विकास 1947 में भारत के विभाजन के रूप में अपने चरम बिंदु पर पहुँचा। विभाजन केवल एक भौगोलिक सीमा का रेखांकन नहीं था, बल्कि यह सदियों पुरानी साझा संस्कृति का हिंसक विखंडन था।

- **विभाजन: एक सांप्रदायिक तार्किक परिणति :** विभाजन को अक्सर एक आकस्मिक घटना माना जाता है, परंतु ऐतिहासिक विश्लेषण यह दर्शाता है कि यह दशकों से चल रही सांप्रदायिक राजनीति का अंतिम उत्पाद था। पॉल ब्रास के अनुसार, "विभाजन केवल जिन्ना की जिद नहीं थी, बल्कि यह उन सांप्रदायिक पहचानों का परिणाम था जिन्हें औपनिवेशिक सत्ता और स्थानीय कुलीन वर्गों ने मिलकर गढ़ा था" (**ब्रास, 2003**)।

1946 के 'डायरेक्ट एक्शन डे' (Direct Action Day) और उसके बाद हुए कलकत्ता और नोआखली के दंगों ने यह स्पष्ट कर दिया था कि सांप्रदायिकता अब केवल चुनावी मेजों तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह सड़कों पर खूनी संघर्ष का रूप ले चुकी थी। लॉर्ड माउंटबेटन का 'जून थर्ड प्लान' (June 3rd Plan) इसी सांप्रदायिक दबाव की उपज था।

- **हिंसा और विस्थापन का स्वरूप :** विभाजन की त्रासदी का सबसे काला पक्ष वह मानवीय हिंसा थी जिसने मानवता को शर्मसार कर दिया। लगभग 10 से 15 लाख लोग मारे गए और 1.5 करोड़ से अधिक लोग विस्थापित हुए।

1. **महिलाओं पर हिंसा:** उवर्शी बुटालिया ने अपनी पुस्तक 'The Other Side of Silence' में उल्लेख किया है कि सांप्रदायिक हिंसा में महिलाओं के शरीर को 'सामुदायिक सम्मान' का प्रतीक बनाकर निशाना बनाया गया (**बुटालिया, 1998**)।
2. **सांस्कृतिक क्षति:** पंजाब और बंगाल जैसे प्रांतों में, जहाँ साझा भाषा और संस्कृति थी, वहां सांप्रदायिकता ने पड़ोसी को पड़ोसी का दुश्मन बना दिया। ज्ञानेंद्र पांडेय इसे "इतिहास की वह विस्मृति" कहते हैं जहाँ राष्ट्रवाद की जीत तो हुई लेकिन समुदायों की हार हुई (**पांडेय, 1990**)।

- **तात्कालिक राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव :** विभाजन ने भारतीय राजनीति पर दूरगामी प्रभाव डाले:

1. अल्पसंख्यक असुरक्षा: विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में रह गए अल्पसंख्यकों के मन में 'नागरिकता' और 'सुरक्षा' को लेकर गहरा भय व्याप्त हो गया।
2. कश्मीर समस्या: सांप्रदायिक आधार पर हुए विभाजन ने कश्मीर जैसे विवादास्पद मुद्दों को जन्म दिया, जो आज भी दक्षिण एशिया की राजनीति में अस्थिरता का मुख्य कारण है।
3. धर्मनिरपेक्षता की चुनौती: भारत ने विभाजन के बावजूद स्वयं को धर्मनिरपेक्ष घोषित किया, लेकिन विभाजन की कड़वी यादों ने भारतीय राजनीति में दक्षिणपंथी और सांप्रदायिक विमर्श को हमेशा के लिए एक आधार प्रदान कर दिया।

निष्कर्ष : भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता के आरंभ और विकास का यह ऐतिहासिक अध्ययन स्पष्ट करता है कि यह परिघटना न तो आकस्मिक थी और न ही भारतीय समाज की कोई अपरिहार्य नियति। यह एक सुविचारित

राजनीतिक प्रक्रिया का परिणाम थी, जिसकी जड़ें औपनिवेशिक हितों और आधुनिक युग की उभरती सामाजिक-आर्थिक प्रतिस्पर्धाओं में गहरी थीं।

इस शोध के प्रमुख निष्कर्षों को निम्नलिखित बिंदुओं में संक्षेपित किया जा सकता है:

- औपनिवेशिक निर्मिति: सांप्रदायिकता के बीज ब्रिटिश 'बांटो और राज करो' की नीति द्वारा बोए गए थे। जेम्स मिल जैसे इतिहासकारों द्वारा इतिहास का सांप्रदायिक वर्गीकरण और 1909 के पृथक निर्वाचन मंडल (Separate Electorates) जैसे वैधानिक प्रावधानों ने धार्मिक पहचान को एक 'राजनीतिक शक्ति' में बदल दिया।
- सांस्कृतिक राष्ट्रवाद बनाम धर्मनिरपेक्षता: जहाँ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक समावेशी और धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद का ढांचा तैयार किया, वहीं मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा जैसे संगठनों के उदय ने 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' को बढ़ावा दिया। कांग्रेस की कुछ रणनीतिक चूक और तुष्टिकरण बनाम सख्त धर्मनिरपेक्षता के द्वंद्व ने सांप्रदायिक शक्तियों को खाद-पानी दिया।
- आर्थिक आधार: सांप्रदायिकता केवल धर्म की लड़ाई नहीं थी, बल्कि यह मध्यम वर्ग के बीच सरकारी नौकरियों और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के लिए होने वाला संघर्ष था। जैसा कि बिपिन चंद्रा (1984) तर्क देते हैं, आर्थिक असुरक्षा को धार्मिक असुरक्षा के रूप में प्रस्तुत करना सांप्रदायिकता की सबसे बड़ी सफलता थी।
- विभाजन की विरासत: 1947 का विभाजन सांप्रदायिकता के तार्किक अंत का परिणाम था। इसने न केवल भारत के भूगोल को खंडित किया, बल्कि भविष्य की राजनीति के लिए 'बहुसंख्यकवाद' और 'अल्पसंख्यक असुरक्षा' जैसी चुनौतियाँ छोड़ दीं।

आज के संदर्भ में, यह अध्ययन हमें यह समझने की दृष्टि प्रदान करता है कि जब भी राजनीति में धर्म का उपयोग सत्ता प्राप्ति के साधन के रूप में किया जाता है, तो वह लोकतंत्र की धर्मनिरपेक्ष नींव को कमजोर करता है। सांप्रदायिकता का मुकाबला केवल कानूनों से नहीं, बल्कि एक 'साझा नागरिक पहचान' और 'इतिहास के सही बोध' से ही संभव है।

संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)

प्रमुख पुस्तकें और शोध ग्रंथ (Books & Research Treatises)

1. **अंबेडकर, बी. आर.** (1945). Pakistan or the Partition of India. बॉम्बे: ठाकर एंड कंपनी (पृ. 85-110).
2. **बुटालिया, उ.** (1998). The Other Side of Silence: Voices from the Partition of India. नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स (पृ. 120-145).
3. **भार्गव, आर.** (1998). Secularism and Its Critics. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 42-60).
4. **ब्रास, पी. आर.** (1974). Language, Religion and Politics in North India. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 119).
5. **ब्रास, पी. आर.** (1991). The Politics of India Since Independence. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 230-255).
6. **ब्रास, पी. आर.** (2003). The Production of Hindu-Muslim Violence in Contemporary India. वाशिंगटन: यूनिवर्सिटी ऑफ वाशिंगटन प्रेस (पृ. 45-72).
7. **बिपिन चंद्रा.** (1984). Communalism in Modern India. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन (पृ. 150-185).
8. **बिपिन चंद्रा.** (2005). Communalism in Modern India (संशोधित संस्करण). नई दिल्ली: हर-आनंद पब्लिकेशंस (पृ. 1-25).
9. **बिपिन चंद्रा, मुखर्जी, मृदुला एवं मुखर्जी, आदित्य.** (2008). India Since Independence. नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स (पृ. 410-435).

10. **ब्राउन, जे. एम.** (1972). Gandhi's Rise to Power: Indian Politics 1915-1922. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 140-162).
11. **ब्रीचर, एम.** (1959). Nehru: A Political Biography. लंदन: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 310).
12. **कूपलैंड, आर.** (1944). The Constitutional Problem in India. लंदन: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 75).
13. **हंटर, डब्ल्यू. डब्ल्यू.** (1871). The Indian Musalmans. लंदन: ट्रुबनेर एंड कंपनी (पृ. 11-40).
14. **हसन, एम.** (1991). Nationalism and Communal Politics in India, 1885-1930. नई दिल्ली: मनोहर पब्लिकेशंस (पृ. 200).
15. **हसन, एम.** (1997). Legacy of a Divided Nation: India's Muslims since Independence. लंदन: हर्स्ट एंड कंपनी (पृ. 55-80).
16. **जलाल, ए.** (1985). The Sole Spokesman: Jinnah, the Muslim League and the Demand for Pakistan. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 174-210).
17. **जोन्स, के. डब्ल्यू.** (1976). Arya Dharm: Hindu Consciousness in 19th-Century Punjab. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस (पृ. 90-115).
18. **झा, एस.** (1972). Political Elite in Bihar. बॉम्बे: वोरा एंड कंपनी (पृ. 145).
19. **कौशिक, पी. डी.** (1964). The Congress Ideology and Programme (1920-47). बॉम्बे: एलाइड पब्लिशर्स (पृ. 88-105).
20. **मजूमदार, ए. के.** (1960). Advent of Independence. बॉम्बे: भारतीय विद्या भवन (पृ. 210).
21. **मजूमदार, आर. सी.** (1966). History of the Freedom Movement in India, Vol. II & III. कलकत्ता: फर्मा के.एल. मुखोपाध्याय (पृ. 320-350).
22. **मिल, जे.** (1817). The History of British India. लंदन: बाल्डविन, क्रैडॉक और जॉय (खंड 1, पृ. 110).
23. **मून, पी.** (1961). Divide and Quit. लंदन: चैटो एंड विंडस (पृ. 95).
24. **मिंटो, लेडी.** (1934). India, Minto and Morley, 1905-1910. लंदन: मैकमिलन (पृ. 45-50).
25. **पेज, डी.** (1982). Prelude to Partition. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 215).
26. **पांडेय, जी.** (1990). The Construction of Communalism in Colonial North India. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 155-190).
27. **पणिक्कर, के. एन.** (1991). Colonialism, Culture, and Resistance. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 70).
28. **प्रसाद, आर.** (1946). India Divided. बॉम्बे: हिंद किताब्स (पृ. 112).
29. **रजा, एम.** (1986). Education and the Muslim Community in India. नई दिल्ली: NIEPA (पृ. 50-65).
30. **रॉबिन्सन, एफ.** (1974). Separatism Among Indian Muslims. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 340).
31. **सरकार, सुमित.** (1973). The Swadeshi Movement in Bengal: 1903-1908. नई दिल्ली: पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (पृ. 20-45).
32. **सरकार, सुमित.** (1983). Modern India: 1885-1947. दिल्ली: मैकमिलन (पृ. 140-160).
33. **स्मिथ, डी. ई.** (1963). India as a Secular State. प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 98).

34. **सिंह, ए. आई.** (1987). The Origins of the Partition of India, 1936-1947. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 210-240).
35. **स्ट्रैची, जे.** (1888). India: Its Administration and Progress. लंदन: मैकमिलन एंड कंपनी (पृ. 225).
36. **थापर, रोमिला.** (1989). The Past as Presence: Historiography, Ideology and Nationalism. नई दिल्ली: (पृ. 15-30).
37. **थापर, रोमिला.** (2004). Early India: From the Origins to AD 1300. कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 10-25).
38. **वर्ष्णेय, ए.** (2002). Ethnic Conflict and Civic Life. येल यूनिवर्सिटी प्रेस (पृ. 115-140).
39. **योंग, आई. टी. एवं कुदैसिया, जी.** (2000). The Aftermath of Partition in South Asia. लंदन: रूटलेज (पृ. 80).

प्राथमिक स्त्रोत एवं भाषण (Primary Sources & Speeches)

40. **क्रॉस, लॉर्ड.** (1886). Correspondence with Lord Dufferin. नेशनल आर्काइव्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।
41. **गोलवलकर, एम. एस.** (1939). We, or Our Nationhood Defined. नागपुर: भारत पब्लिकेशंस (पृ. 15-28).
42. **जिन्ना, एम. ए.** (1940). Presidential Address at the Lahore Session of Muslim League. (22-24 मार्च 1940).
43. **सावरकर, वी. डी.** (1937). Presidential Address at Hindu Mahasabha Session. अहमदाबाद।
44. **लॉर्ड कर्जन.** (1905). Speeches on Partition of Bengal. आधिकारिक राजपत्र (Gazette)।

लेख एवं शोध पत्रिकाएं (Articles & Journals)

45. **डालरिम्पल, डब्ल्यू.** (2015). "The Great Divide: The Violent Legacy of Partition". The New Yorker.
46. **गोपाल, एस.** (1975). "Jawaharlal Nehru and Secularism". Historical Review, Vol I.
47. **असीथ कुमार मजूमदार.** (1960). "The Morley-Minto Reforms and its Impact". Indian Political Science Review.
48. **पॉइंटिंग, जे.** (1992). "The Divide and Rule Policy in British India". Journal of Colonial History.
49. **मैकडोनाल्ड, रैमसे.** (1932). "The Communal Award Statement". British Parliamentary Papers.
50. **नेहरू, जवाहरलाल.** (1928). "The Nehru Report: An Analysis". AICC Archives.
51. **गांधी, एम. के.** (1921). "Hindu-Muslim Unity and Khilafat". Young India.
52. **लाला लाजपत राय.** (1924). "The Communal Problem in India". The Tribune.
53. **मुंशी, के. एम.** (1942). "The Akhand Hindustan Movement". Pilgrimage to Freedom Publications.

•